वेदों में मानस-चिकित्सा

Srinarayan Singh

Chirkunda, Dhanbad, Jharkhand

Abstract

Vedas are the soul of Indian culture where one may get ample knowledge of science, religion, spiritualty and also, environmental consciousness. These texts are the source of all types of knowledge and can provide such a foundation to human life, which can eliminate selfishness, greediness, hatred and other such negative tendencies. Vedas can also spread the spirit of love, benevolence, mercy, selfless- service, etc.. Many scientific principles are also present in these important books. Principles related to gravitation, hydroelectricity, solar and hydrogen energy, atomic theory. etc. may he mentioned as some of the examples for their presence there.

Many Richas related to medical sciences can also be found in Atharva Veda, whose purpose is to give freedom to the human beings from various types of physiological, psychological and psychosomatic disorders or diseases. In the related paper, there will be detailed discussion regarding Manas Chikitsa, which has various dimensions. This therapy helps in enhancement of the Prana-Shakti and thus, leads to recovery and consequent freedom from different types of diseases. Suppression and removal of diseases can also be achieved by auto-suggestion methodologies, which also form a part of this.

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा है। वेदों में विज्ञान, धर्म, अध्यात्मादि से सम्बन्धित अनन्त ज्ञान सुरक्षित हैं। वेद विभिन्न प्रकारों के ज्ञानों का ही नहीं अपितु मानव जीवन की आधारशिला का भी निर्माण करते हैं। ***'सत्यमेव जयते नानृतं, सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः'*** उचित रीति से ही धर्नाजन करना चाहिए, क्योंकि ***'रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यग्ने***[१] वही ***ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पुर्णमुदच्यते***[२] ब्रह्म की व्यापकता तथा अव्यय परब्रह्म को व्यक्त करता है तो ***'नित्य परिमण्डलम्', 'आकाश शब्दमात्रम्' इयं वेदिः परोअन्तः पृथिव्या***[३] के रूप में खगोल विज्ञान, सोमेन आदित्याः बलिनः तथा दिविसोमो अधिश्रितः[४] के रूप में हाइड्रोजन उर्जा, 'सदैव सौम्येदमग्र आसीदेकमोवाद्वितीयम्'[५] के रूप में परमाणु विज्ञान, 'रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः' के रूप में वैमानिक विद्या, 'गुरुत्वात्पतनम्' द्वारा गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त, 'यो अनिध्यो दीदयदप्स्वन्तर्यं' तथा 'अपां नपान्मधुतीरपो'[६] द्वारा जल-विद्युत ऊर्जा शक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। उसी प्रकार पर्यावरण, कृषि, जल विज्ञान, भूधात्विक विज्ञान के साथ-साथ शल्य चिकित्सा - 'सद्यो जङ्घतामायसी विश्पलायै धने हिते सर्वदे प्रत्यधन्तम्' तथा 'तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्दन'[७] तथा पुनर्नवजीवन प्रदान करने वाली औषधियों का उल्लेख प्राप्त होता है। अनेक रोगों का उल्लेख तथा निदान वेदों में प्राप्त होता है। उनमें एक रोग मानस रोग भी है। वेदों में मानस रोग की चिकित्सा ही प्रस्तुत शोध प्रपत्र का प्रतिपाद्य है।

मन की पवित्रता और नीरोगता ही मनुष्य को प्रसन्न रखती है। उसका दूषित होना रोगों के आगमन का सूचक है। मैत्रायणी उपनिषद में कहा भी गया है कि- 'मन ही मनुष्य के बन्धन (व्याधि युक्त) होना और मोक्ष (रोग रहित होने) का कारण है।[८] यजुर्वेद के शिवसंकल्प सूक्त में 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' मन की शुद्धता का सूचक है। मन दूषित है तो शरीर भी दूषित और रोगग्रस्त होता है।

चरक के अनुसार मानस रोग प्रज्ञापराध (बुद्धि के आदेशों की उपेक्षा) से उत्पन्न होते हैं, ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, अहंकार और द्वेष आदि मन के विकार अर्थात् मानसिक रोग प्रज्ञापराध से उत्पन्न होते हैं।[९]

मन का विपरीत प्रवृत्ति में प्रवृत्त होना ही मानसिक रोग है। मानसिक रोगों के तीन कारण माने जाते हैं। १. कुलज (Hereditary), २. मानसिक (Psychic) तथा ३. शारीरिक (Physical)। इस शोध प्रबन्ध में मानसिक (Psychic) - मन के विभिन्न संघटकों के असामञ्जस्य या प्रतिकूल परिस्थिति से उत्पन्न होने वाले मानस रोगों की चिकित्सा का प्रतिपादन है।

Vinaa Bharati

१. क्रोध - अथर्ववेद में क्रोध की चिकित्सा का वर्णन है।[१०] क्रोध चिकित्सा में दर्भ तथा भूरिमूल औषधियों के प्रयोग का उल्लेख है। दर्भ का तात्पर्य कुश से है। जल में कुश डालकर रखें फिर उस जल को छानकर पी जाने पर क्रोध शान्त होता है। दूसरी औषधि है भूरिमूल।[११] भूरिमूल का तात्पर्य है- बहुत जड़ों वाला। खस को ही भूरिमूल कहा जाता है। खस का छना हुआ जल पीने से क्रोध शान्त होता है तथा दाह, थकान मदादि दूर होते हैं।

२. मोह शोक- अथर्ववेद में मोह तथा शोक को दूर करने के लिए सोमादि औषधियों का उल्लेख है।[१२] सोम नामक औषधि क्रोधोत्पन्न, जलोत्पन्न, आँख, वाणी आदि के दुरुपयोग से उत्पन्न मानसिक रोगों का शमन करती है।[१३]

३. ईर्ष्या - ईर्ष्या मनुष्य को भीतर ही भीतर जला देती है। जिस प्रकार शीतल जल से अग्नि को शान्त करते हैं उसी प्रकार सद्विचाररूपी जल से ईर्ष्या को शान्त करना चाहिए।[१४] ईर्ष्या की औषधि समुद्र के पास से लायी जाती है।[१५] इसे सिन्धुफल कहा जाता है। यह भ्रांतिनाशक, ईर्ष्यानाशक तथा शिरोरोग नाशक है।[१६]

४. उन्माद- उन्माद रोग की चिकित्सा अथर्ववेद में इस प्रकार वर्णित है। अग्नि[१७] में सुगन्धित कपूर, चन्दन, तुलसी, इलायची, केसर, गूगल आदि वस्तुएँ तथा पौष्टिक कन्दमूल छुहारा, किशमिश आदि एवं रोगनाशक गिलोय आदि औषधियाँ डालकर उसका धुआँ सुंघाने से रोगी के मस्तिष्क में चेतना, स्फूर्ति और प्रसन्नता आती है। अथर्ववेद में ज्ञान तन्तुओं को आघात पहुँचाने वाले तत्त्वों को कृमि, राक्षस आदि नाम दिए गए हैं। इनके प्रभाव से मनुष्य विचारहीन या आसुरी प्रभाव वाला हो जाता है। अजशृंगी ऐसी कृमियों का नाश करती है।[१८]

डॉ. कपिल देव द्विवेदी के शोधानुसार- अथर्ववेद में उल्लिखित ये औषधियाँ भी उन्माद रोग का शमन करती है। अश्वत्थ (पीपल)[१९] तथा उदुम्बर (गूलर)[२०] इसकी समिधा से हवन किया जाता है तथा क्षिप्तभेषजी (पिप्पली) वातीकृत भेषजी (पीपर)[२१] एवं बभ्रु (सहस्रपर्णी, शंखपुष्पी)[२२] यह रसायन है। ये उन्माद दुर्बलता तथा गण्डमाला में लाभदायक है। महाभारत शान्तिपर्व[२३] में उसकी पुष्टी की गयी है- "धूपैरञ्जनयोगैश्च नस्यकर्मभिरेव च।। भेषजैः स चिकित्स्यः स्यादुन्मात्रेण गच्छति।"

५. अपस्मार (मृगी) रोग- मृगी अति प्रचलित मानस रोग है। इसमें व्यक्ति मूर्छित होकर गिर पड़ता है। अथर्ववेद में दशवृक्ष अर्थात् दशमूल को सन्धिवात और मस्तिष्कवात (अपस्मार) रोगों की औषधि बताया गया है।[२४] इसके अतिरिक्त न्यस्तिका[२५] या शंखपुष्पी का उल्लेख है। यह अपस्मार दूर करती है। अथर्वपरिशिष्ट में वचा (वच) का उल्लेख है। यह अपस्मार, उन्माद तथा वातरोगों को नष्ट करती है।[२६]

६. धनुर्वात या क्षिप्त रोग- अथर्ववेद में क्षिप्त रोग की चिकित्सा पिप्पली दी गयी है।[२७] धनुर्वात में व्यक्ति की आकृति कुब्जवत हो जाती है।

७. मूर्छा रोग- तैतिरीयादि संहिताओं में खर्जूर का उल्लेख मूर्छा रोग के उपचार हेतु बताया गया है।[२८]

८. दुःस्वप्न और स्वप्नदोष- मानस रोगों का मूल कारण मन का दूषित होना है। मन में काम-क्रोध लोभ ईर्ष्यादि के कारण दुःस्वप्न तथा स्वप्नदोष नामक मानसिक रोग उत्पन्न होता है, जिसमें नींद में ही व्यक्ति बड़बड़ाने, चीखने, भागने, डरने तथा वीर्यपात जैसी गम्भीर घटनाओं का सृजन करता है। दुःस्वप्न के लिए वरुण (वरुण, वरणावृक्ष) की मणि (माला) को धारण करना लाभप्रद है।[२९] अथर्ववेद तथा पैप्पलाद संहिता में आञ्जन (पहाड़ी अंजन या सौभीर अंजन) को दुःस्वप्न तथा स्वप्नदोष की औषधि बताया गया है। अंजन वृक्ष की मणि भी बाँधने का उल्लेख है।[३०]

मानस रोगों में उक्त रोग दैहिक तथा मानसिक अशुद्धि से उत्पन्न रोग हैं, लेकिन अथर्ववेद कृत्या प्रयोगों द्वारा भी रोगोत्पत्ति की सूचना प्रदान करता है। महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है कि राजा को कृत्या नष्ट करने वाले वैद्यों का भी संग्रह करना चाहिए-

औषधानि च सर्वाणि मूलानि च फलानि च।
चतुविधांश्च वैद्यान् वै संगृह्णीयाद् विशेषतः।।[३१]

अर्थात् सब प्रकार के औषध मूल फूल तथा विष का नाश करने वाले, घाव पर मरहम-पट्टी करने वाले, रोगों का निवारण करने वाले तथा कृत्या का नाश करने वाले राजा इन चारों प्रकार के वैद्यों का संग्रह करें।

अथर्ववेद में भी कृत्या प्रयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। शत्रु के मन तथा मस्तिष्क पर प्रयोगकर्ता तन्त्र-मन्त्र एवं यज्ञों द्वारा अभिचार से - शत्रु नाश के लिए, शत्रु सेना के विनाश के लिए, शत्रुओं के यज्ञों को नष्ट करने के लिए तथा उन यज्ञों के पुरोहितों को नष्ट करने के लिए कृत्या कर्म किए जाते हैं।[३२] इसी प्रकार अज्ञात चोरों का पता लगाने के लिए, जादू टोना करने वालों को नष्ट करने के लिए, पति को वश में करने के लिए, अपनी सौत या सपत्नी को नष्ट करने के लिए कृत्या कर्म किए जाते हैं।[३३] कृत्या कर्म दुर्भावग्रस्त होकर किया जाता है। अतः करने वाला तथा

Vijnana Bharati

जिस पर किया जाता है दोनों मानसिक आधि (क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष) से युक्त ही होते हैं। कृत्या पाप कर्म है।[३४] कृत्या प्रयोग या अभिचार यज्ञों के विषय में कहा जाता है कि ये मन वचन तथा कर्म तीन प्रकार से किये जाते हैं। जिन पर कृत्या प्रयोग किया जाता है वह व्यक्ति अगर मानसिक रूप में मजबूत नहीं है तो जादू-टोने के माध्यम से प्रयोगकर्ता मानसिक शारीरिक रूप से स्वानुकूल करके अपंग बना देते हैं। इसमें व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है। जब औषधि प्रयोग से उन्माद, अपस्मारादि में लाभ न हो तो कृत्या जानने वाले वैद्य की सहायता लेनी चाहिए। मानस रोगों की चिकित्सा औषधियों के अतिरिक्त अन्य उपायों से भी की जाती है। जिनमें ये विधियाँ प्रयुक्त होती है। चरक संहिता में भूत अध्याय इसका प्रमाण है।

१. मन्त्र - मन्त्र चिकित्सा ध्वनि तरंग चिकित्सा है। ध्वनि मन्त्रों द्वारा उत्पन्न होकर तरंग के रूप में ऊपर जाती हैं तथा सूर्य की सूक्ष्म शक्तियों को आत्मसात् कर साधक के शरीर में प्रविष्ट होती है। ध्वनि का अन्य स्वरूप संगीत चिकित्सा है। ऋग्वेद में मंत्र शक्ति का उल्लेख है। मन्त्र द्वारा शरीर तथा मन पुष्ट होता है। शरीर में विद्यमान दूषित तत्व नष्ट होते हैं। फलतः मानसिक तनाव, शिरोरोग, कुण्ठा, स्नायुरोग से व्यक्ति मुक्त होता है। मन्त्र में दुर्विचारों का नाश होता है। मन पवित्र तथा शुद्ध रहता है।[३५]

कृत्या प्रयोगों में उन्माद, यदि वह देवकृत, ब्रह्मराक्षस तथा ग्रहण से हुआ है तो उन्माद रोग की चिकित्सा अग्नि में हवि देकर करने का विधान प्रतिपादित है। 'अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसीति'।[३६] कृत्या प्रयोगों से प्राप्त उन्मादि रोगों का मन्त्र बल से, संकल्प शक्ति से विपरीत प्रयोग भी दर्शाया गया है।

यां ते चक्रु रामे पात्रे या चक्रुः मिश्रधान्ये।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।[३७]

अभिचार मन्त्रों द्वारा कृत्या को पुनः उसी पर लौटा देने की विधि अथर्ववेद में वर्णित है। कभी-कभी उक्त उन्मादों से व्यक्ति परेशान होता है तो मन्त्र बलेन उन्माद की रोकथाम की जाती है। अतः स्पष्ट है कि मंत्र रोग और कृमियों को नष्ट करते हैं- द्युमदमीवचातनं रक्षोहा[३८] मन्त्र प्रयोग से दुःस्वप्न-नाश भी किया जाता है।[३९]

२. मनोवैज्ञानिक चिकित्सा- अथर्ववेद में मानस रोग के उपचार हेतु मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के अन्तर्गत संकल्प चिकित्सा को स्थान प्रदान किया गया है। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में आश्वासन चिकित्सा प्राप्त होती है। यथा- 'सोऽरिष्ट न मरिष्यसि, न मरिष्यसि मा विभेः'[४०], 'माविभेर्न मरिष्यसि, जरदष्टिं कृणोमि त्वां।'[४१] तथा तुम औषध लेते रहो मैं तुम्हें दीर्घायु करता हूँ - 'प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदृष्टिं कृणोमि त्वा'[४२] अथर्ववेद में उल्लेख है कि वरुणदेव ने मनोवैज्ञानिक उपचार के द्वारा चिकित्सा की- 'त्वं मनसा चिकित्सा।'[४३]

कृत्या परिहार : कृत्या से उत्पन्न रोगों का परिहार चार प्रकार से किया जाता है। १. औषधि के द्वारा - अपामार्ग आदि औषधियों से, २. ज्ञान और विद्या (ब्रह्मविद्या) के बल से अर्थात् मनोबल तथा विचारशक्ति से, ३. ऋचा अर्थात् मन्त्र पाठ से तथा ४. ऋषियों द्वारा छिड़के हुए जल से। अभिचार या जादू टोना के द्वारा मन में उत्पन्न विकारादि दोष दूर करने हेतु टोना किए हुए व्यक्ति के ऊपर से पत्थर चारों ओर घूमाकर आग में डालना चाहिए। वह पत्थर चट-चट करके टूट जाएगा और टोने का प्रभाव नष्ट हो जाएगा- अबूमानस्तस्यां दग्धायां बहुता फट् करिकति।[४४] इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि लोहे की कील या आँख में अंजन लगाने पर भी कृत्या का प्रभाव नहीं होता - अयसमयेनाङ्केन[४५] एवं 'नैनं प्राप्तनोति शपथो न कृत्या .... यस्त्वा बिभर्ति आञ्जन'[४६] अथर्ववेद के अनुसार अपामार्ग, नागरमोथा यदि धारण किया जाय तो यह कृत्या प्रयोग करने वालों को नष्ट कर देता है।[४७]

मानसिक रोग से ग्रस्त व्यक्ति की यदि मानसिक स्थिति मजबूत कर दी जाय तो उस पर कृत्या का प्रभाव नहीं होगा। निरपराध तथा सत्य का पालन करने वाले पर कृत्या का प्रभाव नहीं होता - 'मा असमानिच्छो अनागसः'।[४८]

जल चिकित्सा- जल मानस रोग की चिकित्सा में सर्वोत्तम औषधि है। अधिक गहराई से निकाला गया जल अत्युत्तम होने के कारण सर्वोत्तम चिकित्सा का साधन है। जल पाप और पापभावनाओं का नाश करता है। यह दुःस्वप्नों का भी नाशक है।[४९] अतः यदि स्वच्छ, शुद्ध जल से हाथ-पैर धोकर दाँत और मुँह साफकर सोया जाय तो कुस्वप्न नहीं आते।

मणि धारण द्वारा चिकित्सा- जिन वृक्षों से औषधियाँ निर्मित होती है, यदि उन वृक्षों की शाखाओं, जड़ों आदि को धारण किया जाता है तो रोगों की शान्ति होती है।

जाँड़िग मणि को माला या ताबीज की तरह धारण किया जाता है। यह मृगी, कफ, उन्माद, भूतबाधादि को हरने वाली है। यह सभी प्रकार के कृत्या तथा अभिचार प्रभावों को नष्ट करती है।[४९]

Vijnana Bharati

प्रतिसरमणि[५०] – इस मणि को धारण करने पर अप्सरा, गन्धर्व तथा मनुष्यों का कोई भी कृत्या प्रयोग सफल नहीं होता।

वरमणि – यह दु:स्वप्न, स्वप्नदोषादि को दूर करती है तथा हृदय व शरीर की दुर्बलता मिटाती हुई सभी प्रकार के भय को दूर करती है।[५१] दर्भमणि– क्रोध पर नियंत्रण करती है।

अश्वत्थमणि – यह उन्माद रोग नाशक है। लोक में प्रचलित है कि किसी व्यक्ति को भूत पकड़ता है तो उसके कान में पीपल का डण्ठल डालने पर वह शान्त हो जाता है।

मणिधारण के तीन लाभ हैं। १. अलंकरण, २. मानसिक शान्ति प्रसन्नता तथा ३. वीरत्व (उत्साहादि) भावों को जगाना तथा विविध रोगों का प्रतिकार।

प्राणशक्ति : ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्राण शक्ति का बहुत महत्व वर्णित है। अथर्ववेद का कथन है कि वर्तमान भूत और भविष्य सभी कुछ प्राण पर निर्भर है– 'प्राणेह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितं'।[५२] प्राणायाम शरीर के अन्दर व्याप्त सभी दोषों को जलाकर शरीर को शुद्ध करता है। फलत: मन मस्तिष्क शरीर नीरोग रहता है। पूरक, रेचक तथा कुम्भक नामक प्राणायाम के द्वारा प्राणशक्ति को मजबूत किया जाता है।

निष्कर्ष यह है कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति मात्र औषधियों के बल पर मानस रोगों की चिकित्सा के क्षेत्र में प्रवृत्त है। लेकिन अथर्ववेद में मानस रोग किन कारणों से उत्पन्न हो रहे हैं? इसके आधार पर वह चिकित्सा के विधान को व्यक्त करता है। अत: यह बात स्पष्ट होती है कि व्यक्ति अगर मानसिक समस्याओं से ग्रस्त है तो उसकी चिकित्सा हेतु तन्त्र, मन्त्र, औषधी, मणि, दर्भ, प्राणशक्ति तथा संकल्पशक्ति (Auto Suggestion) का सहारा लिया जाय तो व्याधिग्रस्त व्यक्ति शीघ्र लाभ प्राप्त करेगा। लेकिन उक्त प्रयोगों के बाद भी यदि समस्या कम या समाप्त नहीं हो रही है तो रोगी पर कृत्या आदि का प्रभाव मान कृत्या प्रयोग परिहार का सहारा लेना चाहिए। आज आधुनिक चिकित्सा शास्त्र औषधि पर, योग पर, प्राणायाम पर विश्वास व्यक्त तो करता है लेकिन वह अभिचार, तथा कृत्यादि पर संदेहयुक्त है। चूंकि वेद सर्वविध ज्ञान के भण्डार है तथा उनमें कृत्या का उल्लेख है तो वह मिथ्या नहीं हो सकता। अत: हमें मानसिक रोगों की चिकित्सा में औषधि मन्त्र तथा मणि (रत्न) त्रिविध प्रयोग चिकित्सकीय सफलता, हेतु अनिवार्य रूप से करना चाहिये। नवीन तथा प्राचीन दोनों विधियों पर शोधकार्य अपेक्षित है। हमारे अनुसन्धाताओं के लिए यह विषय विचारणीय है।

सन्दर्भ :

१. ऋग्वेद – ३.१४.६।

२. बृहदारण्यकोपनिषद् – ५.१.१।

३. यजुर्वेद – २३.६२।

४. ऋग्वेद – १०.८५.१।

५. छान्दोग्योपनिषद् – ६.२.१।

६. ऋग्वेद – १०.३०.४ पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध।

७. ऋग्वेद – १.१/६.१५-१६।

८. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:। मैत्रा.उप. ४.११।

९. चरक.सूत्र. ७.५२।

१०. अ. ६.४.३.१।

११. अ. ६.४.३.२।

१२. अ. ६.९६.१।

१३. अ. ६.९६.२; अ. ६.९६.३।

१४. अ. ७.४५.२।

१५. अ. ७.४५.१।

१६. निघण्टु रत्नाकर

१७. अ. ६.१११.२।

१८. अ. ४.३७.२।

१९. अथर्व परि. २३.६.५।

२०. बौधायन श्रौतसूत्र.।

२१. अथर्ववेद ६.१०९.१; पैप्पलाद संहिता १९.२७.९।

२२. अथर्ववेद ६.१३९.३।

२३. महाभारत, शान्तिपर्व, १४.३४-३५।

२४. अ. २.९.१; अ. २.९.२।

२५. अ. ६.१३९.१, ५

२६. तैत्ति. २.४.९.२।

२७. अ. ६.१०९.१।

२८. भाव. फलादि. ११५-१२१, पृ० ३२७।

२९. ऋग्. – १०.१०३.१२; अथर्व. ३.२.५; अ. ९.८.९।

३०. अथर्व. १.१०.३।

३१. महाभारत, शान्तिपर्व, ६९.५९ (गीता प्रेस)।

३२. अथर्व. ७ सू. ७७/८.८१/७.७०/४/४०/७/९०।

३३. अथर्व. ७ सू. ९५,९६/१.८/६/१३९/७.३८/२.३०/७.३५।

Vijana Bharati

३४. अथर्व. ५.१४.६।

३५. अथर्व. २.१०.१।

३६. अर्थ. का. ६, अ. ११, सू. ११२।

३७. अर्थ. ५/६/३१।

३८. ऋग्वेद - ७.८.९।

३९. अथर्व. १९/६/५९।

४०. अर्थ. ८.२.२४।

४१. अर्थ. ५.३०.८।

४२. अर्थ. ५.३०.५।

४३. अथर्व. ५.११.१७।

४४. अथर्व. ४.१८.३।

४५. अथर्व. ७.११५.१।

४६. अथर्व. ४.९५।

४७. अथर्व. ५.१४.४।

४८. अथर्व. १०.१७७।

४९. अथर्व. १९.१.१०-११।

५०. अथर्व. २९.३४.२, ४।

५१. अथर्व. ८.५.१३।

५२. अथर्व. १०.३.६, ८।

५३. अथर्व. ११.४.१५।

Vijnana Bharati